Baglamukhi Diksha Vidhi
बगलामुखी दीक्षा पद्धति

Shri Yogeshwaranand Ji
+919917325788, +919410030994
shaktisadhna@yahoo.com
www.anusthanokarehasya.com
www.baglamukhi.info

सर्व प्रथम भगवती बगलामुखी की उपासना वैदिक रीति से ब्रह्माजी ने की, जिसकी शक्ति से उन्होंने सृष्टि की रचना की। इसके उपरान्त इस विद्या को ब्रह्मा जी ने अपने पुत्रों सनक आदि ऋषियों को प्रदान की । सनत्कुमार ने इस विद्या को नारद जी को प्रदान किया। नारद जी ने सांख्यायन मुनि को इस विद्या का उपदेश दिया, जिन्होंने इस विद्या का वर्णन अपने ग्रंथ 'सांख्यायन तंत्र' में ३६ पटलों में किया है। जगत् के उत्थान के लिए उन्होंने ही इस ग्रंथ की रचना की।

इस महाविद्या के दूसरे उपासक भगवान विष्णु हुए।

तृतीय उपासक भगवान शिव हुए, जिन्होंने इस पवित्र विद्या का उपदेश महर्षि च्यवन को दिया। महर्षि ने एक बार इसी विद्या के प्रभाव से इन्द्र के वज्र को स्तम्भित कर दिया था ।

इसके उपरान्त यह विद्या आगे बढ़ती चली गयी।

भगवती बगलामुखी से सम्बन्धित अनेक मंत्र हैं लेकिन सामान्य रूप से उनका छत्तीस-अक्षरी मूल मंत्र ही अधिक प्रचलित है। साधारणतया एक तथ्य यह भी अनुभव में आया है कि अधिकांश गुरू एवं शिष्यों के मध्य सीधे इसी मूल मंत्र का आदान-प्रदान होता है। दीक्षा

का आरम्भ ही मूल मंत्र से कर दिया जाता है। जबकि यह अनुभव जन्य तथ्य है कि इस मंत्र की दीक्षा सीधे ही नहीं दी जानी चाहिए बल्कि इस साधना में क्रम दीक्षा का आाश्रय लिया जाना चाहिए। तारा, त्रिपुर सुन्दरी एवं बगलामुखी में क्रम दीक्षा का ही विधान है। कहने का तात्पर्य यह है कि सबसे पहले एकाक्षरी अर्थात् बीज मंत्र, फिर त्रयक्षरी मंत्र और इसके उपरान्त क्रमशः अन्य मंत्र प्रदान करते हुए अन्त में ही मूल मंत्र की दीक्षा होनी चाहिए। अनुभव में यह आया है कि जो साधक सीधे ही मूल मंत्र से दीक्षित होते हैं, उन्हें विभिन्न प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वे इस विद्या के प्रति सशंकित हो उठते हैं, जबकि वे मूल कारण से अनभिज्ञ होते हैं।

बगलामुखी महाविद्या की दीक्षा में भी शाक्ती, शाम्भवी और मांत्री दीक्षा के विधानों का पालन किया जाता है। इनके अतिरिक्त भी शास्त्रों के अनुसार अन्य कई दीक्षा विधान हैं, जिनका अनुसरण करते हुए गुरू द्वारा शिष्य को दीक्षा प्रदान की जाती है। मूल मंत्र का पुरश्चरण पूर्ण होने के उपरान्त ही साधक का पूर्णाभिषेक करने का विधान है।

दीक्षा पद्धति एवं गुरू-चयन

दीक्षा से तात्पर्य है- गुरू के द्वारा शिष्य को किसी देवी अथवा देवता का मंत्र प्रदान किया जाना। एक गुरू जब दीक्षा प्रदान करता है तब वह अपने शिष्य को प्रदान करता है- ज्ञान सिद्धि एंव शक्ति का दान। वह अपने शिष्य के अज्ञान, पाप और दारिद्रय का नाश कर देता है। दीक्षा तो एक तेजपुंज है, जिससे साधक के अन्दर निहित अज्ञान एवं अविद्या का नाश होता है, शिष्य के शरीर की असुद्धियां समाप्त हो जाती हैं।

बिना दीक्षा के शिष्य को मंत्र-जप करते हुए चाहे कितना ही समय क्यों न बीत जाये, उसकी सिद्धि का मार्ग प्रशस्त नहीं होता।

किसी भी साधक को योग्य गुरू के सानिध्य में साधना करनी चाहिए। गुरू का आत्मदान और शिष्य का आत्म समर्पण ही सिद्धि की प्रथम सीढी है। प्रत्येक मंत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए फलदायी नहीं होता है। यह तो गुरू ही जान सकता है कि किस शिष्य को कौन सा मंत्र दिया जाये ताकि वह अपने जीवन काल में सिद्धि प्राप्त कर सके।

अदीक्षित व्यक्ति के भक्तिपूर्वक सहस्र उपचारों द्वारा अर्चना करने पर भी देवगण उसकी पूजा ग्रहण नहीं करते, जिस कारण अदीक्षित व्यक्ति के समस्त कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। यही कारण है कि अदीक्षित व्यक्ति पशु के समान माना जाता है। जो व्यक्ति पुस्तकों अथवा शास्त्रों में लिखे अनुसार मंत्र का जप करता है, उसे फल मिलना बहुत दूर की बात है।इसीलिए किसी भी महाविद्या को गुरू से यत्न पूर्वक ग्रहण करते हुए उसकी साधना करें।

कुलाचार सम्पन्न व्यक्ति को कुल गुरू कहा जाता है। कुछ लोग यह मानते है कि जो गुरू हमारी पीढ़ियों से चला आता है, वही कुलगुरू होता है। वास्तव में ऐसा नहीं हैं। कुलाचार से सम्पन्न व्यक्ति ही कुल गुरू होता है। उससे दीक्षा लेकर ही मंत्र जप करना चाहिए।

केवल गुरू ही उपयुक्त हो, इससे ही केवल काम नहीं चलता बल्कि शिष्य को भी उपयुक्त होना चाहिए। मंत्र की गति और कम्पन के साथ गुरू की आध्यात्मिक शक्ति शिष्य में संचारित होती है। जो गुरू है उसमें यह शक्ति-संचार की क्षमता होनी चाहिए। इसके साथ-साथ शिष्य में भी यह शक्ति-संचरण की क्षमता होनी चाहिए। यदि बीज उत्तम हो और भूमि उचित न हो तो सुन्दर वृक्ष की आशा नहीं की जा सकती है।

मात्र दर्शन-विज्ञान-चर्चा अथवा ग्रन्थों का पाठ करने से यह शक्ति संचार नहीं हो सकता। शिष्य के प्रति सम्वेदनावश गुरू की आध्यात्मिक शक्ति कम्पन विशिष्ट होकर शिष्य में संचारित होती है।

जो व्यक्ति अपने गुरू को केवल मनुष्य मानता है, अपने मंत्र को केवल शब्द मानता है और अपने इष्ट देवता को केवल पत्थर की शिला मानता है, ऐसा व्यक्ति केवल नरक का पात्र होता है। एक सद-शिष्य को अपने गुरू को पिता, माता, स्वामी, देवता मानकर उनकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि यदि भगवान रूठ जाते हैं तो गुरू शिष्य की सहायता कर सकता है, लेकिन यदि गुरू रूठ जाते हैं तो भगवान भी सहायता नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यक है कि मन, वचन, शरीर और कर्म से अपने गुरू की सेवा करें।

आपके पिता ने आपको यह शरीर प्रदान किया है, यह बात सही है लेकिन यदि ज्ञान ही नहीं है तो यह शरीर किसी काम का नहीं है। क्योंकि ज्ञान के अभाव में मनुष्य पशु सदृश होता है, फिर पशु तो पशु ही होता है, उसका क्या जीना और क्या मरना?

सदैव स्मरण रखें कि अपने मंत्र का त्याग करने वाले को असामयिक मृत्यु प्राप्त होती है, अपने गुरू का त्याग करने वाले को दरिद्रता की प्राप्ति होती है, जबकि गुरू और मंत्र त्यागी को रौरव नरक की प्राप्ति होती है। गुरूदेव के निकट होते हुए भी जो किसी अन्य देवता की पूजा करता है, वह घोरतर नरकगामी होता है। उसके द्वारा की गयी समस्त पूजा निष्फल होती है।

आधुनिक युग में ऐसे अनेकानेक लोग हैं जो बुद्धि की मलीनता के कारण अथवा शिक्षा के दोष से, या फिर सांसारिक दोष के कारण गुरू की महत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनका यह भी मानना है कि दीक्षा हिन्दुओं का एक संस्कार मात्र है। ऐसे लोगों को यह भी समझना चाहिए कि ऐसे ही संस्कारों को मानकर हिन्दु सम्प्रदायों में जितने लोगों ने श्रेष्ठत्व प्राप्त किया है, क्या किसी अन्य सम्प्रदाय में इतनी अधिक मात्रा में उत्कृष्ट व्यक्तित्व के लोग हुए हैं?

दीक्षा एक तेजपुंज है, जिससे साधक के मन में निहित अज्ञान एवं अविद्या का नाश होता है, उसके शरीर की अशुद्धियां समाप्त हो

जाती हैं। इसमें गुरू के द्वारा ज्ञान संचार एवं आत्मदान की प्रक्रिया होती है।

सामान्य रूप से दीक्षा के तीन भेद होते हैं १. शाक्ती २. शाम्भवी एवं ३. मान्त्री।

शाक्ती दीक्षा में कुण्डलिनी जाग्रत कर उसे ब्रह्मनाड़ी में से होकर सहस्रार में स्थित परम शिव में मिला लेने की प्रक्रिया की जाती है।

श्री गुरूदेव अपनी प्रसन्नता के क्षणों में दृष्टिपात अथवा स्पर्श से शिष्य को स्वयं जैसा ही बना देने की प्रक्रिया को शाम्भवी दीक्षा कहा जाता है।

मंत्रोपदेश के द्वारा गुरूदेव द्वारा शिष्य को जो ज्ञान दिया जाता है, उसे मांत्री दीक्षा कहा जाता है।

इन तीनों के अतिरिक्त दीक्षा के अनेक भेद शास्त्रों में निहित हैं परन्तु उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता है।

उपरोक्त परिपेक्ष्य में एक मात्र इतना कहना ही पर्याप्त है कि साधक को योग्य गुरू के सानिध्य में ही साधना करनी चाहिए। गुरू का आत्मदान और शिष्य का आत्मसमर्पण- इन दो धाराओं के मिलन से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। बिना गुरू के जीवन व्यर्थ है। जो साधक गुरू के दिये वचनों का पालन करता है, गुरू सेवा में लीन रहता है, वह निश्चय ही जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

Shri Yogeshwaranand Ji
+919917325788, +919410030994
shaktisadhna@yahoo.com
www.anusthanokarehasya.com
www.baglamukhi.info

My dear readers! Very soon I am going to start an E-mail based monthly magazine related to tantras, mantras and yantras including practical uses for human welfare. I request you to appreciate me, so that I can change my dreams into reality regarding the service of humanity through blessings of our saints and through the grace of Ma Pitambara. Please make registered to yourself and your friends. For registration email me at shaktisadhna@yahoo.com. Thanks

Some Of the Books Written By Shri Yogeshwarnand Ji

1. Baglamukhi Sadhna Aur Siddhi

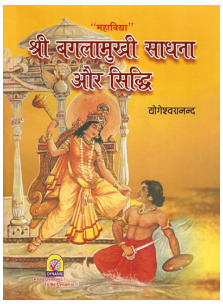

2. Mantra Sadhna

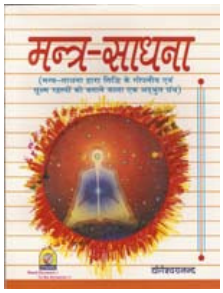

3. Shodashi Mahavidya